भाकपा (माले) रेड फ्लैग :
विचारधारात्मक, राजनीतिक व सांगठनिक लाइन

भाकपा (माले) रेड फ्लैग भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुपों में से एक है। लेकिन पिछले दिनों इसके साथ दो मुख्य दिक्कतें रही हैं। पहला तो यह कि विचारधारा और सांगठनिक उसूलों के मामले में इसने बहुत अधिक अवसरवाद का परिचय दिया है। विचारधारात्मक अवसरवाद तो यहां तक पहुंच गया है कि इसे संशोधनवाद से कुछ ही दूर कहा जा सकता है। इसी तरह सांगठिक मामलों में स्थापित कम्युनिस्ट मापदंडों को औपचारिक तौर पर दुहराते हुए इसने व्यवहार में जो किया है वह उसे भाकपा (माले) लिबरेशन के करीब ले जाकर खड़ा कर देता है।

दूसरी मुख्य दिक्कत राजनीतिक लाइन – राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के मूल्यांकन तथा भारतीय क्रांति के कार्यक्रम – से संबंधित है। यहां वह नई बोतल में पुरानी शराब भरने का काम करता है। या तो वह पिछले पचास सालों के विकास को देखने से इंकार कर देता है या अगर थोड़ा बहुत परिवर्तन देखता भी है तो उन्हें पुराने सूत्रों में ही फिट करने का प्रयास करता है। इस तरह वह मूलत:, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 1963 की जनरल लाइन को और राष्ट्रीय स्तर पर 1970 के कार्यक्रम की बातों को ही दुहराता है तथा अपनी इस कार्यवाही में वह कई असमाधेय अंतर्विरोधों में जा फंसता है।

आगे हम कुछ विस्तार से रेड फ्लैग की लाइन की इन दिक्कतों की चर्चा करेंगे।

विचारधारात्मक लाइन

पिछले कुछ सालों में रेड फ्लैग की विचारधारात्मक लाइन में आये बदलाव की स्पष्टतम अभिव्यक्ति भाकपा (माले) लिबरेशन के प्रति इसके दृष्टिकोण में आये परिवर्तन में होती है। भारतीय कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे में आज पिछले दस सालों से यह स्वीकृत अवस्थिति है कि भाकपा (माले) लिबरेशन संशोधनवादी हो गई है। खुद लिबरेशन ने अपने सिद्धांत और व्यवहार में इसे बार-बार प्रमाणित किया है। क्रांतिकारी खेमे में लिबरेशन को लेकर कोई विभ्रम नहीं है। ऐसे में यदि कोई क्रांतिकारी संगठन लिबरेशन के प्रति कोई नरम रुख अख्तियार करता है या उसे किसी भी रूप में क्रांतिकारी मानता है तो वह विचारधारात्मक तौर पर अवसरवाद के अलावा कुछ नहीं माना जायेगा। लेकिन रेड फ्लैग आज यही कर रहा है। आइये, रेड फ्लैग की इस विकास यात्रा को देखें।

1988-96 के दौर में रेड फ्लैग, लिबरेशन को संशोधनवादी संगठन की तरह चित्रित करती रही है। यहां तक कि उसने इसे भाकपा (मा) के समांतर घोषित कर दिया तथा उसे गद्दार तक कह दिया। यह है कुछ बानगी :

'' ... इन सभी परिवर्तनों ने, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय मसलों तथा भारत में नव जनवादी क्रांति पूरा करने की रणनीति व रणकौशल में परिवर्तन भी शामिल हैं, इस संगठन को, संक्षेप में, भाकपा (माले) के ग्रुप से भाकपा (मा) के ग्रुप में परिवर्तित कर दिया है।'' *(डेड स्टार, मई-जून' 88)*

''.... हमारे क्रान्तिकारी आंदोलन के कुछ हिस्से पतित हो गये हैं और वे जनता में विभ्रम के बीज बो रहे हैं। उनमें से एक, कानू सान्याल एण्ड कम्पनी, वी0पी0 सिंह के साथ खुलेआम सहयोग कर रहा है और शासक

वर्गीय राजनीति का पुछल्ला बनने तक पतित हो गया है। विनोद मिश्र के नेतृत्व वाला एक दूसरा हिस्सा सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का बेशर्म पैरोकार बन गया है।'' (रेड स्टार, दिसंबर' 88)

''इस समय जबकि साम्राज्यवादी और उसके गुर्गे मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धान्तों पर पागलों की तरह आक्रमण कर रहे हैं तथा सभी तरह के संशोधनवादी, जिसमें संशोधनवादी स्कूल में नये भर्ती हुए विनोद मिश्र व कानू सान्याल जैसे लोग भी शामिल हैं, जनता को क्रांतिकारी रास्ते से भटकाने की गद्दारी कर रहे हैं, तब मार्क्सवादी-लेनिनवादी शक्तियों को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा को अपहोल्ड करने के लिए आगे आना चाहिए और संशोधनवादियों का भंडाफोड़ तथा भर्त्सना करनी चाहिए।'' (रेड स्टार, जुलाई-अगस्त' 89)

''जो कोई भी विनोद मिश्र द्वारा चलाये जा रहे संशोधनवादी गुट के हाल के इतिहास से परिचित है, उसे आश्चर्य नहीं होगा कि इसके भीतर छोटे एल्त्सिनों का एक धड़ा पैदा हो जाय। ... आज मार्क्सवादी-लेनिनवादी शक्तियों का यह कार्यभार बन गया है वे ऐसे गद्दारों का भंडाफोड़ करें और उन्हें अलग-थलग कर दें।'' (रेड स्टार, सितंबर' 90) (सभी उदाहरण Proletarian Van guard, Vol. - 1, No. 1, May-June 1998 से, अनुवाद हमारा)

उपरोक्त उद्हरणों से एकदम साफ है कि रेड फ्लैग (रेड स्टार जिसकी पत्रिका है। हालांकि रेड फ्लैग इसके कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों का मंच होने की बात करता है, लेकिन यह केवल रेड फ्लैग द्वारा संचालित उन्हीं की पत्रिका है।), इस दौर में लिबरेशन को स्पष्ट तौर पर संशोधनवादी चिन्हित करता है तथा ऐसे ''गद्दारों'' का भंडाफोड करने तथा उन्हें अलगाव में डालने का आह्वान करता है।

लेकिन जनवरी' 96 में आकर रेड फ्लैग, इन्ही ''गद्दारों'' व ''साम्राज्यवाद के पैरोकारों'' के साथ संयुक्त मोर्चा बना लेती है। कानू सान्याल, विनोद मिश्र इत्यादि के साथ यह संयुक्त मोर्चा साम्राज्यवाद का विरोध करने के नाम पर बनाया जाता है।

संयुक्त मोर्चा बनाना रणकौशल का मामला भी हो सकता है। यह किसी क्षणिक मुद्दे पर अपने घोषित शत्रुओं के साथ भी बनाया जा सकता है। लेकिन रेड फ्लैग द्वारा साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए बनाया गया यह संयुक्त मोर्चा निम्न सवाल खड़े करता है:

1. आज साम्राज्यवाद विरोध रणकौशल का नहीं, रणनीति का मामला है। ऐसे मामले में ''गद्दारों'' और ''साम्राज्यवाद के पैरोकारों'' के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने से क्या हासिल होगा, सिवाय जनता में विभ्रम के ?

2. यदि मान भी लिया जाये कि ''गद्दारों'' के साथ रणकौशलात्मक संयुक्त मोर्चा बनाया जा सकता है (और इसकी पूर्ण संभावना और इजाजत है) तो क्या इस संयुक्त मोर्चे के लिए उनके खिलाफ विचारधारात्मक संघर्ष को कुंद (या खत्म) कर दिया जाना चाहिए ? और यदि यह किया जाता है तो क्या यह परले दरजे का अवसरवाद नहीं है ? क्या इस अवसरवाद की अनिवार्य परिणति संशोधनवाद नहीं है ?

और रेड फ्लैग ने ठीक यही काम किया है। संयुक्त मोर्चा बनने के बाद से इसने लिबरेशन पर आक्रमण बन्द कर दिया है। उसका भंडाफोड़ करने का काम रोक दिया है। यही नहीं, उसने लिबरेशन को क्रांतिकारी संगठनों की श्रेणी में गिनना शुरू कर दिया है। अब रेड स्टार के अंकों में क्रांतिकारी संगठनों के जब नाम गिनाये जाते हैं तो इसमें लिबरेशन का नाम भी होता है। उसे साफ तौर पर संशोधनवादी के रूप में चिन्हित नहीं किया जाता। रेड फ्लैग के मुखपत्र रेड फ्लैग पत्रिका के जुलाई-सितम्बर' 97 के अंक में लिबरेशन को सीधे-सीधे संशोधनवादी कहने के बदले ऐसे क्रान्तिकारी संगठन के रूप में चित्रित किया गया है जो दक्षिणपंथी रास्ते पर जा रहा है तथा जिससे संघर्ष और एकता की जरूरत है। यानि रेड फ्लैग की निगाह में अब लिबरेशन ऐसा संशोधनवादी, ''गद्दार'' संगठन नहीं है जो जनता में ''विभ्रम'' पैदा कर रहा है तथा उनको भटका रहा है और जिसका भंडाफोड़ कर उसे अलगाव में डालने की जरूरत है। इसके बदले वह अब क्रान्तिकारी संगठन बन गया है जो महज दक्षिणपंथी रास्ते पर जा रहा है व जिसे ठीक करने के लिए उससे संघर्ष और एकता की जरूरत है। और यह सब तब जबकि पिछले सालों में लिबरेशन संशोधनवाद के दलदल में

और गहरे उतर गया है तथा कई मायनों में तो वह भाकपा व भाकपा(मा.) से भी नीचे चला गया है। क्या यह शुद्ध अवसरवाद नहीं है?

लिबरेशन के प्रति रेड फ्लैग का यही रुख लिबरेशन की छठीं पार्टी कांग्रेस के दस्तावेजों की आलोचना में दिखाई देता है। इस आलोचना (रेड फ्लैग, अंक-10, जुलाई-सितंबर' 1998) में लिबरेशन को मार्क्सवादी-लेनिनवादी खेमे का एक ग्रुप माना गया है जिसके साथ विचारधारात्मक-राजनीतिक संघर्ष की जरूरत है, जिससे सभी जेनुइन वाम ताकतों की एकता सुनिश्चित की जा सके। इस पूरी आलोचना में लिबरेशन को कहीं भी संशोधनवादी नहीं कहा गया है तथा सभी विचारधारात्मक मुद्दों को कभी भी जोरदार तरीके से नहीं उठाया गया है। इन विचारधारात्मक सवालों को आलोचना में अक्सर ही रणनीतिक सवालों की श्रेणी में पहुँचा दिया गया है। नीचे कुछ उद्हरणों से इसकी एक बानगी प्रस्तुत की जा रही है।

अंक के संपादकीय में लिबरेशन की छठीं कांग्रेस के दस्तावेजों की आलोचना की जरूरत को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि

''हम आशा करते हैं कि इस तरह के वाद-विवाद एक बार फिर मार्क्सवादी-लेनिनवादी आंदोलन के स्वस्थ विचारधारात्मक संघर्ष को आगे बढ़ायेगा'' *(पृष्ठ-4)*

आगे, आलोचना की शुरूआत में कहा गया है कि ये दस्तावेज ''गंभीर ध्यानाकर्षण'' की मांग करते हैं, क्योंकि

''इन कांग्रेसों की कार्यवाहियां तथा ऐसे संगठनों द्वारा प्रस्तुत आम दिशा वर्तमान समय में बहुत महत्वपूर्ण हैं जब जेनुइन वाम ताकतों की एकता अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई हो.... ''।

''हम इसी भावना में लिबरेशन की छठीं कांग्रेस के बुनियादी दस्तावेजों की आलोचना यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।'' *(पृष्ठ-13)*

अब, लिबरेशन का संशोधनवाद चीन के मूल्यांकन, तीन दुनिया के सिद्धान्त तथा सांस्कृतिक क्रांति पर उसके रुख में सबसे ज्यादा स्पष्ट होता है। इन बातों पर लिबरेशन के संशोधनवादी रुख की सीधे भर्त्सना करने के बदले रेड फ्लैग इसकी अत्यन्त नरम आलोचना करता है तथा उसे सीधे-सीधे संशोधनवादी घोषित करने से इंकार कर देता है :

''लिबरेशन बेलचे को बेलचा कहने से इंकार कर देता है। वह चीन को ऐसा देश मानने से इंकार कर देती है जो समाजवादी रास्ते से मूलत: पतित हो गया है।'' *(वही, पृष्ठ-14)*

''चीन को पूंजीवादी रास्ते पर जाने वाला एक पतित समाजवादी देश कहने से इंकार करना, मार्क्सवाद के सभी सिद्धान्तों के विपरीत जाता है। इसे जल्दबाजी से बचने के नाम पर उचित नहीं ठहराया जा सकता।''
(वही, पृष्ठ-17)

''लिबरेशन द्वारा चीन के प्रति दिखायी गयी विशेष चिन्ता, मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का परिचायक नहीं है। बल्कि यह चीन के वर्तमान पूंजीवादी पथगामी शासकों की भर्त्सना से इंकार करना है।''
(वही, पृष्ठ-17)

इन सबके बावजूद लिबरेशन को संशोधनवादी नहीं घोषित किया जाता। वह तो महज एक दक्षिणपंथी प्रवृत्ति है।

इसी तरह रेड फ्लैग तीन दुनिया के सिद्धान्त के बारे में यह आलोचना करता है : ''यह और कुछ नहीं, देंग-हुआ गुट का वर्ग सहयोगवादी तीन दुनिया का सिद्धान्त (TWT) है। लिबरेशन का यह सब कहना ''कौमिन्टर्न तथा महान बहस की अवस्थितियों का पूर्णतया निषेध है'' तथा यह ''ख्रुश्चेववादी-ब्रेझनेववादी और देंगवादी अवस्थिति है।'' (वही, पृष्ठ-16)

जहां तक सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सवाल है, लिबरेशन अपने दस्तावेज में उसका केवल एक बार जिक्र करता है और वह भी उसकी असफलता के संबंध में। इस पर रेड फ्लैग की टिप्पणी इस प्रकार है-

''यह वक्तव्य सवालों का पूरा एक जखीरा खड़ा कर देता है तथा यह बुनियादी विचारधारात्मक सवालों के सम्बन्ध में भी लिबरेशन की व्यवहारवाद का प्रतीक है।'' *(वही, पृष्ठ-16)*

और रेड फ्लैग बस इतना मांग करता है कि

''महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं से सही सबक निकाले जाने चाहिए। इसे असफल घोषित कर नकार देने से काम नहीं चलेगा।'' (वही, पृष्ठ-17, उपरोक्त सभी अनुवाद हमारे)

यह रुख है एक ऐसे संगठन का, जो महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को माओ विचारधारा का मूल अवदान मानता है तथा जो आज के मार्क्सवाद के रूप में माओ-विचारधारा को स्वीकार करता है। लिबरेशन के प्रति यह नरमी क्यों? सांस्कृतिक क्रान्ति की चर्चा न करने वाले या उसे नकारने वाले को मार्क्सवादी कैसे मान सकते हैं? उसे मार्क्सवादी-लेनिनवादी खेमे का अंग कैसे मान सकते हैं? कैसे आप उससे एकता की बात कर सकते हैं? लेकिन रेड फ्लैग यह सब करती है और अपनी पुरानी अवस्थिति को छोड़कर करती है। लिबरेशन को ''गद्दार'', संशोधनवादी कहना छोड़कर करती है। क्या यह सब विचारधारात्मक अवसरवाद नहीं है? इस विचारधारात्मक अवसरवाद की अंतिम परिणति क्या संशोधनवाद नहीं होती?

विचारधारा में इसी अवसरवाद के तहत ही रेड फ्लैग ने विनोद मिश्र के निधन पर उन्हें बतौर क्रांतिकारी के श्रद्धांजलि दी :

''कामरेड विनोद मिश्र के निधन से सिर्फ भाकपा (माले) लिबरेशन का ही गंभीर नुकसान नहीं हुआ है जिसका नेतृत्व वे पिछले दो दशकों से कर रहे थे, बल्कि वह तो सम्पूर्ण वाम आंदोलन की हानि है।... भाकपा (माले) लिबरेशन की सेन्ट्रल कमेटी और कामरेड विनोद मिश्र के परिवार के सदस्यों के प्रति अपना हार्दिक दुख व्यक्त करते हुए उनसे आशा रखते हैं कि कामरेड विनोद मिश्र के नेतृत्व में सभी क्रांतिकारी ताकतों को भाकपा(माले) लिबरेशन सहित एकजुट करने के प्रयास को लिबरेशन का नेतृत्व आगे बढ़ायेगा।- सचिव, भाकपा (माले) रेड फ्लैग।'' (लालतारा, वर्ष 3, अंक 12-1)

यानि ''साम्राज्यवाद का पैरोकार'' व ''गद्दार'' अब उनकी निगाह में क्रान्तिकारी हो गया था, जो क्रांतिकारी ताकतों को एक करने का प्रयास कर रहा था !

हद तो तब हो गई जब रेड फ्लैग ने भाकपा (मा) की एक नेता गोदावरी पारूलेकर के निधन पर उन्हें क्रांतिकारी के रूप में श्रद्धांजलि दी। नवम्बर' 96 के अंक में रेड स्टार ने लिखा :

''... कामरेड गोदावरी पारूलेकर के निधन के साथ ही कम्युनिस्ट आंदोलन ने एक महान योद्धा खो दिया है।'' (पूर्वोक्त Proleterian Vanguard में उद्धृत)

इस श्रद्धांजलि के कई अर्थ निकलते हैं। (1) गोदावरी पारूलेकर मजदूर आंदोलन में पूंजीपति वर्ग की एजेन्ट (संशोधनवादी) न होकर एक क्रांतिकारी (कामरेड) थीं जिनके निधन से कम्युनिस्ट आंदोलन ने एक योद्धा खो दिया। (2) चूंकि कम्युनिस्ट आंदोलन ने एक योद्धा खो दिया, अतः वे जिस पार्टी का हिस्सा थीं वह भी कम्युनिस्ट आंदोलन का हिस्सा है। यानि भाकपा (मा) कम्युनिस्ट आंदोलन का हिस्सा है, संशोधनवादी पार्टी नहीं।

क्या यह अवसरवाद की इंतहा नहीं है ?

सांगठनिक लाइन

जिस तरह से रेड फ्लैग विचारधारा में अवसरवाद कर रहा है, उसी तरह वह सांगठनिक मामलों में भी अवसरवाद कर रहा है। सांगठनिक मामलों में इसका अवसरवाद सिद्धान्त से ज्यादा व्यवहार में दिखाई देता है। और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि कम्युनिस्ट आन्दोलन में सांगठनिक उसूल स्थापित हो चुके हैं (''क्या करें'', ''वामपंथी कम्युनिज्म'' आदि पुस्तकों, ''कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और ढाँचा'' जैसी तीसरे इंटरनेशनल की

लाइन तथा रूसी और चीनी पार्टी का व्यवहार) और उनमें किसी नवीन आविष्कार की कोई हिमाकत नहीं करता। ऐसे में इस मामले में अवसरवाद व्यवहार में ज्यादा दिखाई देता है। रेड फ्लैग का सांगठनिक अवसरवाद दो स्तर पर दिखाई देता है :

1. इसके सांगठनिक अवसरवाद की सर्वोच्च अभिव्यक्ति इसके खुले पार्टी संगठन में है। इसके सर्वोच्च नेतृत्व समेत समूची पार्टी खुली है। इसके सचिव खुलेआम घूमते हैं, बतौर सचिव खुली प्रेस कान्फ्रेन्स संबोधित करते हैं (1999 में उन्होंने दिल्ली में एक प्रेस कान्फ्रेन्स कर केरल, कर्नाटक व दिल्ली में लोकसभा का चुनाव लड़ने की घोषणा की) तथा वे पार्टी की ऐसी खुली बैठकों को संबोधित करते हैं जिसमें गैर पार्टी लोग भी आकर बैठ जाते हैं तथा जिसकी वीडियो फिल्म बनाई जाती है। क्या वह सब किसी बोल्शेविक संगठन के व्यवहार हैं ? बोल्शेविक पार्टी संगठन के उसूलों में बुनियादी उसूल है कि खुली पार्टियों को भी साथ ही अपना भूमिगत काम जारी रखना चाहिए, अपना भूमिगत ताना-बाना खड़ा करते रहना चाहिए जिससे जरूरत पड़ते ही पार्टी भूमिगत हो सके। द्वितीय इंटरनेशनल की अधिकांश पार्टियां यह नहीं कर पायीं और उनके पतन का सांगठनिक तौर पर यह बुनियादी कारण था।

इस तरह के भूमिगत कार्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह होगी कि इसका सर्वोच्च नेतृत्व (खासकर सचिव) भूमिगत होना चाहिए। कम से कम (एक सीमित घेरे के अलावा), लोगों को सर्वोच्च नेतृत्व के व्यक्तियों की पहचान नहीं होनी चाहिए। लोगों को पता नहीं होना चाहिए कि कौन सर्वोच्च कमेटी में है, कौन नहीं। और जब संगठन एक हद से बड़ा हो जाये (जैसा कि रेड फ्लैग है) तो उसके नेतृत्व को तो निश्चित तौर पर भूमिगत हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो भूमिगत ताना-बाना खड़ा करने कोई भी प्रयास निरर्थक हो जायेगा। केवल ऐसा करके ही पार्टी खुले और गैर कानूनी दोनों कार्यों को सही तरह से अंजाम दे पायेगी।

रेड फ्लैग जैसे संगठन के लिए तो यह और भी जरूरी है। यह नयी जनवादी क्रांति करना चाहता है। यानि यह सिद्धान्ततः भारत में सीमित और औपचारिक जनवाद की उपस्थिति भी नहीं मानता है, बुर्जुआ जनवाद की तो बात ही छोड़िये। यही नहीं, वह देश में लगातार बढ़ रहे फासीवादी खतरे की प्रति आगाह करता है। अब जिस देश में सीमित जनवाद न हो, फासीवाद का खतरा बढ़ रहा हो, जिसमें शंकर गुहा नियोगी व दत्ता सामंत जैसे लड़ाकू ट्रेडयूनियनवादी तक बर्दाश्त न किये जा रहे हों, उसमें क्या एक क्रांतिकारी संगठन के सर्वोच्च नेतृत्व को छोड़ दिया जायेगा ? यदि वह छोड़ा जाता है, तो इसका मतलब क्या निकलेगा ?

लेकिन इस सबके बावजूद रेड फ्लैग का सर्वोच्च नेतृत्व खुलेआम घूमता है, अन्य स्तरों की तो बात क्या की जाये ? कम्युनिस्ट पार्टियों के पिछले सारे अनुभवों को देखते हुए क्या यह सांगठनिक अवसरवाद नहीं है ? क्या यह संगठन को वहां नहीं ले जायेगा, जहां जरूरत पड़ने पर यह क्रांतिकारी कार्यवाही के लिए पूर्णतया निकम्मा साबित होगा ? क्या यह संगठन का वही हश्र नहीं करेगा जो प्रथम विश्व युद्ध के दौरान दूसरे इंटरनेशनल की अधिकांश पार्टियों का हुआ?

2. दूसरा सांगठनिक अवसरवाद पार्टी कतारों की भर्ती और दैनंदिन कार्यो में झलकता है। रेड फ्लैग का पार्टी संविधान कहता है :

''अपवाद स्वरूप मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों में पार्टी सदस्यों को केवल उन व्यक्तियों से ही भर्ती किया जाना चाहिए जिन्होंने वर्ग/जन संगठनों में काम किया है और जो सांगठनिक कामों एवं वर्ग संघर्षों में परखे हुए हैं, जिन्होंने पार्टी फ्रैक्शनों में काम किया है या जो स्वयं सेवक या सशस्त्र दस्तों के सदस्य हैं।'' (धारा-3.3)

यानि सदस्य केवल उन्हें बनाया जायेगा जो ''सांगठनिक कामों व वर्ग संघर्षों में परखे हुए है''। लेकिन व्यवहार में यह ''उसूल'' लागू किया जाता है : जो कोई भी मिल जाय, उसे सदस्य बना लोय ऐसे तीन सदस्य मिल जायें तो कमेटी बना लोय फिर संघर्ष शुरू कर दोय संघर्ष में तपकर वे सही मायने में सदस्य बन जायेंगे। इसी व्यवहारिक ''उसूल'' के कारण वे लोग जो दूसरे क्रांतिकारी संगठनों में बमुश्किल हमदर्द बन पाते, वे रेड

फ्लैग में पार्टी सदस्य बन जाते हैं। यही नहीं, रेड फ्लैग अन्य क्रांतिकारी संगठनों के भगोड़ों को सहर्ष अपने में समेटने को तैयार रहता है जिससे किसी तरह उसकी सदस्य संख्या बढ़ जाये। ऐसे भगोड़े प्रादेशिक कमेटियों के सदस्य और सचिव तक बना दिए जाते हैं।

दूसरे संगठनों से आये लोगों को अपने में शामिल करना गलत नहीं है। लेकिन इस स्थिति में सही तरीका यह है कि जो लोग आ रहे हैं, उनके इतिहास को देखा जाय, उनकी विजातीय प्रवृत्तियों से संघर्ष किया जाये तथा जब वे संगठन की लाइन को अपना लें, तभी उन्हें सदस्य बनाया जाये। यह तब और जरूरी हो जाता है जब संबंधित व्यक्ति अपने पहले के संगठन से पलायन करके आ रहा है, संघर्ष करके और संघर्ष को एक मुकाम तक पहुंचा कर नहीं। यदि ऐसा नहीं किया जाता और महज कहीं अपनी सदस्य संख्या बढ़ाने के लिए या कहीं अपने आधार विस्तार के लिए जिस-किसी को (चाहे वह भगोड़ा ही क्यों न हो) संगठन में भर्ती कर लिया जाता है तो वह शुद्ध सांगठनिक अवसरवाद के सिवा कुछ नहीं है। इससे पार्टी में संख्यात्मक और मात्रात्मक विकास तो हो सकता है, लेकिन सही पार्टी का गठन और निर्माण नहीं हो सकता। ऐसी पार्टी क्रांतिकारी कार्यवाहियों के लिए किसी काम की नहीं साबित होगी।

राजनीतिक लाइन

जहां रेड फ्लैग विचारधारात्मक और सांगठनिक तौर पर अवसरवाद कर रहा है, वहीं वह राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों के मूल्यांकन और भारतीय क्रांति की रणनीति तय करने के मामले में या तो परिवर्तनों को देखने से इंकार कर देता है या फिर वह परिवर्तनों को पुराने फ्रेम में जकड़ने का प्रयास करता है। इसमें वह जड़सूत्रवादी बन कर रह जाता है, हालांकि वह ''ठोस परिस्थितियों को ठोस विश्लेषण'' करने का दावा करता है। आइये, इसे देखें।

क) अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति का मूल्यांकन

रेड फ्लैग वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति का मूल्यांकन करने के लिए 1963 की आम दिशा (जनरल लाइन) तथा खासकर उसके एक सूत्र को आधार बनाती है तथा उसके बाद के 35 सालों के विकास को नजर अंदाज कर देती है। यह तब जबकि रेड फ्लैग खुद स्वीकार करती है कि चीनी पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) ने लेनिन की मृत्यु के बाद ''साम्राज्यवाद में आये भारी बदलाव'' की बात तो की लेकिन उसने उसके मूल्यांकन को नजरअंदाज किया। आम दिशा का उक्त सूत्र निम्नलिखित है :

''बाते साफ हैं, दूसरे विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादियों ने निश्चय ही, उपनिवेशवाद को नहीं छोड़ा है, बल्कि उसका नया रूप, नव उपनिवेशवाद को अपना लिया है। इस तरह नव-उपनिवेशवाद का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि साम्राज्यवादियों को अपने चुनिंदा और प्रशिक्षित दलालों पर निर्भर होकर प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के पुराने रूप को बदलने के लिए बाध्य कर दिया गया। अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी देश सैनिक खेमाबन्दी, फौजी छावनियों का स्थापना, ''गुटों'' तथा ''संघों'' की स्थापना और कठपुतली सत्ता के गठन द्वारा उपनिवेशों और आजाद मुल्कों को नियंत्रित करते हैं, तथा उन्हें गुलाम बनाते हैं। सबसे बढ़कर वे संयुक्त राष्ट्र संघ को इन देशों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने तथा सैनिक, आर्थिक व सांस्कृतिक हमलों के सामने घुटने टेकवाने के औजार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। .... नव उपनिवेशवाद, उपनिवेशवाद का ज्यादा घातक और अहितकर रूप है।'' (महान विवाद - पेज 148) (अंतर्राष्ट्रीय विकास तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी शक्तियों का कार्यभार, भाकपा (माले) रेड फ्लैग के चतुर्थ अखिल भारतीय सम्मेलन द्वारा अप्रैल' 97 में स्वीकृत दस्तावेज, पृष्ठ 14)

रेड फ्लैग इस सूत्र को बहुत कस कर पकड़े हुए है, इतना कस कर कि उसने इसका दम ही निकाल दिया है। वह इस तरह इसके पाठ का अर्थ (textual meaning) निकालता है जैसे कि विभिन्न धर्मों के कट्टर अनुयायी अपने धार्मिक ग्रन्थों के शब्दों का अर्थ निकालते हैं। उपरोक्त उद्हरण के इस कथन का, कि 'नव उपनिवेशवाद, उपनिवेशवाद का ज्यादा घातक और अहितकर रूप है, वह शाब्दिक अर्थ लेता है और सैकड़ों तरीकों से यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि नवउपनिवेशवाद, वास्तव में उपनिवेशवाद से सभी रूपों में ज्यादा घातक है। जबकि उपरोक्त आम दिशा की चौथी टिप्पणी को सांगोपांग पढ़ने से यह साफ अर्थ निकलता है कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी वहां केवल साम्राज्यवाद के नये रूप 'नव उपनिवेशवाद' के घातक चरित्र पर जोर देना चाहती थी जिससे कि लोग उसे हल्केपन से न लें। इससे ज्यादा उसका अर्थ निकालना तथा नव-उपनिवेशवाद को उपनिवेशवाद से सभी रूपों में ज्यादा घातक सिद्ध करने का प्रयास करना इतिहास और मार्क्सवाद का विद्रूपीकरण करना है।

लेकिन रेड फ्लैग यही करता है। सूत्र को कसकर पकड़े हुए वह नये परिवर्तनों को चिन्हित तो करता है परन्तु उनके निहितार्थ निकालने से इंकार कर देता है। वह 1963 के बाद से 35 साल के दौर के परिवर्तनों को महज मात्रात्मक बताता है। जहां तक समय की बात है, 1870 से 1900 के बीच के महज तीस सालों में ही पूंजीवाद के चरित्र में एक मूलभूत परिवर्तन हो गया था। वह मुक्त प्रतियोगिता वाले पूंजीवाद से एकाधिकारी पूंजीवाद में तब्दील हो गया था। वह साम्राज्यवाद में बदल गया था। लेकिन रेड फ्लैग के लिए 1963 से 1997 के पैंतीस साल किसी बड़े गुणात्मक परिवर्तन के लिए काफी कम हैं, हालांकि वह खुद प्रकारान्तर से कहता है कि 1945 से 1963 के महज 18 सालों में साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद से नवउपनिवेशवाद की स्थिति पर आ गया। लेकिन उसके बाद, उसके अनुसार, इतिहास की गति बन्द हो गई। इतिहास 1963 में रूक गया। भगवान जाने वह कब तक वहीं रुका रहेगा!

इस सबके बावजूद रेड फ्लैग खुद जिन परिवर्तनों का जिक्र करता है, वे बताते हैं कि दुनिया वहां नहीं खड़ी है, जहाँ वह 1963 में खड़ी थी। यह हैं वे परिवर्तन :

''नव-औपनिवेशिक स्थितियों में जब पूंजी का भूमण्डलीकरण उच्चतम अवस्था की ओर अग्रसर है और विश्व पूंजी को बांधने की प्रक्रिया पूरी हो रही है, पूंजीपति प्रगतिशील राष्ट्रवाद के प्रवक्ता बिलकुल नहीं हो सकते।'' *(वहीं, पृष्ठ 22, जोर हमारा)*

''दूसरे विश्व युद्ध के बाद नव-औपनिवेशवाद काल में पूंजी के अंतर्राष्ट्रीयकरण ने गहराई और विस्तार दोनों क्षेत्रों में नये आयाम पा लिये हैं। इससे साम्राज्यवादी देशों तथा नव उपनिवेशों के पूंजीपतियों की आम सहमति, जैसा लेनिन ने कहा था, ज्यादा गहरी हो गई है। इससे उनका आर्थिक और राजनीतिक साहचर्य प्रतिक्रांतिकारी दिशा में पहले से ज्यादा बढ़ गया है। उपनिवेशों का पूंजीपति वर्ग विश्व पूंजीपति वर्ग का अभिन्न अंग बन गया है जो क्रांतिकारी शक्तियों के खिलाफ तमाम राष्ट्रविरोधी गैरजनवादी प्रतिक्रांतिकारी शक्तियों के साथ अपने गठबंधन को ज्यादा से ज्यादा मजबूत बनाने में संलग्न है। यह प्रगतिशील क्रांतिकारी पूंजीवाद नहीं है, बल्कि मरणशील साम्राज्यवाद अवस्था का प्रतिनिधि है। नव-उपनिवेशों का शासक पूंजीपति वर्ग न सिर्फ राष्ट्रीय जनवादी क्रांति के कार्यभार को पूरा करने में असमर्थ है बल्कि साम्राज्यवादी प्रतिक्रांति के पक्ष में खड़ा है।''

(वही, पृष्ठ 24, जोर हमारा)

''अक्टूबर क्रांति तथा चीनी क्रांति की अवधि की तुलना में आज के नवऔपनिवेशिक देशों में संख्या में और ताकत दोनों की दृष्टि से एक शक्तिशाली मजदूर वर्ग और मजदूर आंदोलन मौजूद है। जनसंख्या के अनुपात में भी कई औपनिवेशिक देशों में मजदूर वर्ग क्रांति पूर्व रूस से ज्यादा बड़ा है''

(वही, पृष्ठ 24)

''उत्पादन-वितरण सभी क्षेत्रों में मौजूदा संकट को हल करने के लिए साम्राज्यवाद दुनिया में उत्पादन के सभी क्षेत्रों को सीधे अपने नियंत्रण में लाने तथा इस नियंत्रण का मात्रा और पकड़ दोनों में विस्तार के लिए

प्रयत्नशील है। परिणामस्वरूप उपर से राजनीतिक हस्तक्षेप द्वारा वह नव-उपनिवेशों में पुराने प्राक् पूंजीवादी संबंधों को बदलकर उसे साम्राज्यवादी व्यवस्था में एकाकार कर रहा है। वह कृषि तथा अन्य पिछड़े क्षेत्रों में उंचे स्तर पर बाजार संबंधों को बढ़ावा दे रहा है। फलस्वरूप इन देशों में कृषि क्रांति भी ज्यादा से ज्यादा साम्राज्यवाद विरोधी अंतर्वस्तु हासिल करती जा रही है। और नये तरह के संघर्ष, आंदोलन तथा विद्रोह उभर रहे हैं।''

(वही, पृष्ठ 31, जोर हमारा)

''... साम्राज्यवाद नव-उपनिवेशों सहित तमाम देशों में राजकीय हस्तक्षेप द्वारा पूंजीवादी आर्थिक सबंधों का प्रसार कर रहा है।'' *(वही, पृष्ठ 31, जोर हमारा)*

''पूंजीवादी उत्पादन संबंध को नियंत्रित करने तथा सामाजिक कल्याणकारी उपायों को कार्यरूप देने की जिम्मेवारी से मुक्त राज सत्ता बाजार के नियमों को लागू करने वाली अधिकाधिक तानाशाही सत्ता संरचना का रूप लेती जा रही है। विश्व-व्यापी एकाधिकार की स्थिति में राज्यसत्ता खुद आर्थिक शक्तियों के एकाधिकार के सिवाय किसी अन्य चीज का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।'' *(वही, पृष्ठ 31)*

ये कुछ ऐसे तथ्य हैं जो रेड फ्लैग को मजबूरी में स्वीकार करने पड़ते हैं। अन्यथा हो भी नहीं सकता। ये इते मुखर हैं कि जो कोई इन्हें झुठलायेगा, वह खुद हास्यास्पद बनकर रह जायेगा। लेकिन रेड फ्लैग को इनके निहितार्थ निकालने से डर लगता है और वह किसी नयी अवस्थिति पर पहुंचने के बदले पुराने सूत्र से चिपका रहता है। यह ज्यादा सुरक्षित भी है। ये तथ्य साफ बताते हैं कि आज तमाम विश्व पूंजीवाद के घेरे में आ चुका है। साम्राज्यवादी पूंजी के हावी होने के बावजूद, बल्कि उसी के प्रभाव में, सभी गैर-विकसित देशों में आज पूंजीवाद हावी हो चुका है। आज पूंजी ही इन देशों की अर्थव्यवस्था को संचालित कर रही है। पूंजीपति समाज में हावी हैं और वे साम्राज्यवादी पूंजीपति के साथ एकाकार हो गये हैं। देशी-विदेशी पूंजी का भेद मिट गया है या अधिकाधिक मिटता जा रहा है।

अब यदि पूंजी ही इन देशों की अर्थ व्यवस्था की नियामक है तथा पूंजीपति पूर्णतया साम्राज्यवादी पूंजी के साथ एकाकार हैं तो जो भी क्रांति इन देशों में होगी वह पूंजीवाद विरोधी होगी। उसका लक्ष्य पूंजी और पूंजीपति होंगे। यानि वह अपने चरित्र में समाजवादी होगी। समाजवाद इसका एक कार्यभार होगा। दूसरा कार्यभार होगा साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकना। यानि राष्ट्रीय मुक्ति। इस तरह इन देशों में जो भी क्रांति होगी, वह समाजवादी क्रांति होगी जो साथ ही राष्ट्रीय मुक्ति के कार्य को और बचे-खुचे जनवादी कार्यभारों को एक ही साथ पूरा करेगी।

लेकिन रेड फ्लैग यह सीधा सा निष्कर्ष नहीं निकालता। बल्कि वह नवजनवादी क्रांति के उसी पुराने खोल में दुबक जाता है। सब कुछ का वर्णन करने के बाद वह लिखता है :

''ये विकास पूंजीवादी साम्राज्यवादी देशों में सर्वहारा समाजवादी क्रांति तथा नव उपनिवेशों में नवजनवादी क्रान्ति के लिए वस्तुगत परिस्थिति को अधिकाधिक अनुकूल बना रहे है।''

(वही, पृष्ठ-32, जोर हमारा)

भारत के संदर्भ में (अपने कार्यक्रम में) वह इस नवजनवादी क्रान्ति का वर्णन करते हुए धनी किसानों तथा मध्यम बुर्जआ को भी क्रांति में साथ लेने की बात करता है हालांकि अपने उपरोक्त वर्णनों में उन्होंने कहीं भी इन पूंजीपतियों के आंतरिक विभाजन को चिन्हित नहीं किया है। मजे की बात यह है कि वे इन वर्गों को किसी भी हालत में क्रांति के पक्ष में लाना चाहते हैं, भले ही ये वर्ग खुद आने को तैयार न हों।

''हालांकि ये तबके अस्थिर व ढुलमुल हैं तथा साम्राज्यवादी पूंजी व दलाल तबकों के बढ़ते प्रभाव के अधीन हैं, उन्हें जीत कर जनवादी क्रांति के पक्ष में लाना है।'' *(कार्यक्रम, पृष्ठ-10)*

यानि तुम भले ही प्रतिक्रांतिकारी और हमारे दुश्मन हो, हम तुमको अपने साथ लाने के लिए कटिबद्ध है!

इसी जड़सूत्रवाद का नतीजा है, भारत को येन-केन-प्रकारेण नवउपनिवेश घोषित करना। सभी जानते हैं कि चीनी पार्टी भारत को अर्द्ध-सामंती, अर्द्ध-औपनिवेशिक कहती रही है। बल्कि चीनी पार्टी की इन्हीं बातों के कारण 1970 के भाकपा (माले) के कार्यक्रम में भारत को अर्द्ध-सामंती, अर्द्ध-औपनिवेशिक घोषित कर दिया गया। अब, रेड फ्लैग को किसी भी तरह से नवउपनिवेश की अपनी थीसिस को सिद्ध करना है और 1963 की जनरल लाइन में उसे फिट करना है। इस जड़सूत्रवादी को इसके लिए कोई प्रमाण चाहिए। सो वह यह प्रमाण खोज लेता है। 12 जनवरी 1972 के पीकिंग रिव्यू के अंक में एक टिप्पणी छपी थी जिसका शीर्षक था ''भारत में सोवियत संशोधनवाद का नव-उपनिवेशवाद'' तो, इस टिप्पणी को उसने बतौर प्रमाण के पकड़ लिया और चीनी पार्टी द्वारा सैकड़ों बार कहे गये अर्द्ध-उपनिवेश को भूल गयी। जड़ सूत्रवाद, तेरी जय हो।

भारत के बारे में उक्त प्रस्थापना का एक और भी मजेदार पहलू है। टिप्पणी का शीर्षक था: ''भारत में सोवियत संशोधनवाद का नव-उपनिवेशवाद''। इसके पहले हम देख चुके हैं कि आम दिशा में कहा गया था कि नव-उपनिवेश अमेरिका के नेतृत्व में बन रहे थे। अब, 1972 में अमेरिकी साम्राज्यवाद और सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का संघर्ष चरम पर था। तब ऐसे में क्या कहा जाय ? यदि 1963 की आम दिशा को जड़सूत्र की तरह लिया जाये तो इसका यह अर्थ निकलेगा कि 1972 में, अमेरिका व सोवियत संघ के आपसी संघर्ष के चरम बिन्दु पर (जब सोवियत संघ आक्रामक था), भारत अमेरिका के नेतृत्व वाले नव-उपनिवेशवादी विश्व में सोवियत संशोधनवाद का नव उपनिवेश था। है न मजेदार बात ! लेकिन जड़-सूत्रवाद ऐसे ही हास्यापद नजीजे तक पहुंचा सकता है।

जड़सूत्र को तोते की तरह दुहराते रहने से रेड फ्लैग एक और हास्यापद स्थिति में पहुंचता है। 1963 की आम दिशा में तत्कालीन विश्व में जो चार प्रधान अंतर्विरोध गिनाये गये हैं उनमें एक है-समाजवादी खेमे और साम्राज्वादी खेमे के बीच का अंतर्विरोध। रेड फ्लैग 1963 की आम दिशा को चूंकि जस का तस मानता है सो उसे इस नतीजे पर पहुंचने के लिए मजबूर होना पड़ता है कि आज भी यह अंतर्विरोध मौजूद है, हालांकि खुद रेड फ्लैग के अनुसार कोई समाजवादी देश आज विद्यमान नहीं है। यदि कोई समाजवादी देश नहीं है तो फिर समाजवादी खेमा कहां से हो सकता है? और यदि समाजवादी खेमा नहीं है तो समाजवादी खेमे और साम्राज्यवादी खेमे के बीच के अंतर्विरोध का अस्तित्व कहां से हो सकता है? लेकिन रेड फ्लैग तब भी हठपूर्वक इस अंतर्विरोध की मौजूदगी को स्वीकारता है और उसे साबित करने के लिए एक से एक अजीबोगरीब तर्क गढ़ता है।

इस संबंध में रेड फ्लैग की अवस्थिति की हास्यास्पदता को दर्शाने के लिए हम उसी आम दिशा से निम्नलिखित उद्हरण दे रहे है :

''(6) दूसरे विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद और समाजवाद के शक्ति संतुलन में आमूल परिवर्तन हो गया है। इस परिवर्तन का मुख्य संकेत यह है कि दुनिया में अब सिर्फ एक समाजवादी देश नहीं, बल्कि अनेक समाजवादी देश हैं, जो शक्तिशाली समाजवादी खेमे की रचना करते हैं तथा जिन लोगों ने समाजवादी रास्ता अपनाया है, उनकी संख्या केवल 20 करोड़ नहीं बल्कि 100 करोड़, यानि दुनिया की आबादी का एक तिहाई हिस्सा है।'' (अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की आम दिशा के बारे में एक प्रस्ताव, महान बहस, अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन, 1998, पृष्ठ-5)

''समाजवादी खेमे और साम्राज्यवादी खेमे के बीच का अंतर्विरोध दो मूलत: भिन्न समाज व्यवस्थाओं के बीच का, समाजवाद और पूंजीवाद के बीच का, अंतर्विरोध है....'' (वही, पृष्ठ-4)

''(5) वर्तमान विश्व के बुनियादी अंतर्विरोधों के सवाल के बारे में निम्नलिखित गलत विचारों का खण्डन करना चाहिए :

(क) वह विचार जो समाजवादी खेमे और साम्राज्यवादी खेमे के बीच के अंतर्विरोध की वर्ग अंतर्वस्तु को मिटा देता है तथा यह नहीं देख पाता कि यह अंतर्विरोध सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व वाले राज्यों और इजारेदार पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व वाले राज्यों के बीच का अंतर्विरोध है।'' *(वही, पृष्ठ-5)*

अंतर्राष्ट्रीय लाइन से संबंधित इन उलटबांसियों के बाद हम एक दार्शनिक पहलू पर आते हैं। यह दार्शनिक पहलू रेड फ्लैग की अपनी मौलिक खोज लगती है। यह सोवियत संघ में संशोधनवाद के हावी होने के कारण से संबंधित है। हम इससे संबंधित अंशों को जस का तस उद्धृत कर देते हैं :

''वर्तमान युग यानि साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति के युग के संबंध में समझ को विकृत करने समेत इस नव-उपनिवेशिक चरण में साम्राज्यवाद के प्रति त्रुटिपूर्ण रुख ही युद्धोत्तर काल में अंतराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के अंदर नव-संशोधनवाद और संकीर्णतावाद, दोनों का स्रोत बन गया।'' *(वही, पृष्ठ-4)*

''अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उभरकर सामने आ रही ठोस परिस्थिति का मूल्यांकन करने में तथा सर्वहारा की रणनीतिक दिशा को विकसित करने में जो कमजोरी रह गई थी, उसकी पृष्ठभूमि में ही, अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन पर खुश्चेवी संशोधनवाद हावी हुआ और उसने सोवियत संघ को पूंजीवादी रास्ते पर मोड़ दिया।''

(कार्यक्रम, पृष्ठ - 7)

इनसे यह स्पष्ट है कि रेड फ्लैग सोवियत संघ और साथ ही अन्य कम्युनिस्ट पार्टियों में संशोधनवाद के हावी हो जाने का कारण साम्राज्यवाद के नये रूप के बारे में उनकी गलत समझ को मानता है। यह नयी थीसिस माओ द्वारा प्रस्तुत और क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन द्वारा सर्वमान्य लाइन का निषेध है। माओ ने ''महान बहस'' में खुश्चेवी संशोधनवाद का आधार खुश्चेव की साम्राज्यवाद की थीसिस में नहीं बल्कि सोवियत संघ में निर्मित समाजवाद की आंतरिक गति में माना। महान बहस की नवीं टिप्पणी ''खुश्चेव का नकली कम्युनिज्म ...'' में माओ मूलत: इसी प्रश्न को उठाते हैं कि आखिर खुश्चेव परिघटना का कारण क्या है ? खुश्चेवी संशोधनवाद का आधार क्या है ? वह क्यों पैदा हुआ ? इसका उत्तर वे समाजवादी सोवियत संघ में जारी वर्ग संघर्ष में पाते हैं। इसी प्रस्थापना को वे आगे विकसित करते हैं और सांस्कृतिक क्रांति की अवधारणा तक पहुंचते हैं। इसके बाद वे चीनी खुश्चेवों के खिलाफ संघर्ष छेड़ देते हैं। ''पूंजीवादी पथगामियों'' के खिलाफ संघर्ष शुरू हो जाता है।

समाजवादी समाज की प्रकृति इत्यादि के संबंध में प्रस्थापनाएं ही वास्तव में मार्क्सवादी विचारधारा में माओ का मौलिक योगदान हैं, इसीलिए आज हम माओ विचारधारा की बात करते हैं।

लेकिन इन सब को भूलकर साम्राज्यवाद के बारे में गलत अवधारणा को सोवियत संशोधनवाद का कारण बताना, माओ विचारधारा का निषेध है। वास्तव में साम्राज्यवाद के बारे में गलत अवधारणा संशोधनवाद का परिणाम थी, कारण नहीं। वह संशोधनवाद की अभिव्यक्ति थी, उसका स्रोत नहीं। चूंकि खुश्चेव संशोधनवादी हो गया था, अत: उसने साम्राज्यवाद के बारे में एक बकवास अवधारणा प्रस्तुत की। यह नहीं हुआ कि चूंकि उसने एक बकवास अवधारणा प्रस्तुत की, इसीलिए क्रमश: वह संशोधनवादी हो गया। वह विचार को पदार्थ पर प्रधानता देना है। यह भाववाद है।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि यह न केवल भाववाद है बल्कि गैर द्वन्द्ववादी भी है। द्वन्द्ववाद का यह आम नियम है कि चीजों की गति का मूल कारण चीजों के भीतर होता है, बाहर नहीं। यानि चीजों की आंतरिक गति प्रधान होती है। यदि खुश्चेव खुद और उस समय की ढेरों पार्टियाँ संशोधनवादी हो गईं तो उसका कारण किसी बाहरी चीज में नहीं, स्वयं उसी समाज की गति में था, जिसमें से ये पार्टियाँ पैदा हुयी थीं और जिसमें वे काम कर रही थीं, चाहे वे सत्तानशीन हों या नहीं। इसका कारण बाहर देखना, साम्राज्यवाद के बारे में किसी गलत अवधाारणा में इसका कारण तलाशना, द्वन्द्ववाद का निषेध है।

इस अधिभूतवाद और भाववाद का स्रोत क्या है? इसका स्रोत द्वितीय इंटरनेशनल के बारे में लेनिन के रुख को गलत रूप में लेने में है। रेड फ्लैग के अनुसार

''लेनिन ने दूसरे इंटरनेशनल के पतन का विश्लेषण सर्वहारा आंदोलन द्वारा विश्व परिस्थिति तथा पूंजीवाद से साम्राज्यवाद में संक्रमणकालीन गति के नियम का सही मूल्यांकन तथा आत्मसात् न कर पाने की क्षमता की पृष्ठभूमि में किया था। साथ ही इसका संबंध उन्होंने नई विश्व परिस्थिति में यूरोपीय मजदूर आंदोलन में अभिजात मजदूर की उत्पत्ति व विकास में देखा।'' *(वही, पृष्ठ-18)*

यह लेनिन के विश्लेषण का विकृतीकरण है। लेनिन ने दूसरे इंटरनेशनल के पतन का कारण साम्राज्यवाद का सही मूल्यांकन न कर पाने में नहीं बल्कि साम्राज्यवाद द्वारा कमाये जा रहे अतिलाभ और उससे पैदा हुए अभिजात मजदूरों की उत्पत्ति में देखा। यह लेनिन की पुस्तिका ''साम्राज्यवाद : पूंजीवाद को चरम अवस्था'' से एकदम स्पष्ट है जहां लेनिन सीधे इसी सवाल को उठाते हैं कि दूसरे इंटरनेशनल के काउत्स्की जैसे नेताओं की साम्राज्यवाद की गलत अवधारणाओं के कारण क्या हैं। और वे फिर अतिलाभ और तद्जन्य अभिजात मजदूर तथा उससे उपजे नेतृत्व की विस्तारपूर्वक चर्चा करते हैं। यानि दूसरे इंटरनेशन के पतन का कारण साम्राज्यवाद के बारे में इसके नेताओं की गलत अवधारणा नहीं, खुद साम्राज्यवाद था। यह साम्राज्यवाद था जिसने अतिलाभ कमाया और मजदूर वर्ग के ऊपरी तबके को भ्रष्ट किया। इसी भ्रष्ट नेतृत्व ने फिर साम्राज्यवाद के बारे में गलत अवधारणायें प्रस्तुत कीं। जो कोई भी मार्क्सवाद का क-ख-ग जानता है वह इसी नतीजे पर पहुंचेगा। यहाँ हम यह बात साफ कर दें कि लेनिन ने उस अवसरवाद का, जिसकी अंतिम परिणति प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सामाजिक अंधराष्ट्रवाद में और इस कारण दूसरे इंटरनेशनल के पतन में हुई, एक कारण दूसरे इंटरनेशनल की प्रमुख पार्टियों के खुले पार्टी संगठन, बुर्जुआ जनवादी दायरे के भीतर काम करने की आदत तथा गैर-कानूनी काम के तरीके और ढाँचे के अभाव में भी देखा। यह सब 1890 से 1914 के बीच के ''शांतिपूर्ण'' विकास का परिणाम था जब ये पार्टियां केवल कानूनी दायरे तक सिमट कर रह गई थीं। यह दूसरे इंटरनेशनल के पतन का सांगठनिक कारण था। लेकिन रेड फ्लैग इस कारण का जिक्र भी नहीं करता। शायद इसका कारण खुद उसके द्वारा आज अपनाए जा रहे कानूनी पार्टी ढांचे और बुर्जुआ जनवाद तक अपने आप को सीमित रखने में है। 1998 में रेड फ्लैग से निष्कासित आंध्र प्रदेश कमेटी के सचिव रऊफ ने यह आरोप लगाया था कि पार्टी संविधान में गैरकानूनी कार्य से संबंधित पैराग्राफ केवल तब जोड़ा गया जब उन लोगों ने चौथे पार्टी सम्मेलन में इस बिन्दु पर संघर्ष किया।

अत: साफ है कि रेड फ्लैग लेनिन की बात को तोड़ती-मरोड़ती है और फिर इस तोड़-मरोड़ से अपनी भाववादी थीसिस को परवान चढ़ाती है।

अस्तु, एक बार फिर कि खुश्चेवी संशोनधनवाद का कारण साम्राज्यवाद के बारे में उसकी गलत अवधाारणा नहीं थी बल्कि वह था सोवियत समाजवाद में जारी वर्ग-संघर्ष। यह संशोधनवाद उसका परिणाम था। और साम्राज्यवाद के बारे में गलत अवधारणा इस संशोधनवाद का परिणाम थी। सोवियत संघ में समाजवादी समाज के भीतर ही एक पूंजीपति वर्ग पैदा हो गया था, जिसने स्टालिन के निधन के बाद सत्ता पर कब्जा कर लिया। खुश्चेव इसी वर्ग का प्रतिनिधि था। खुश्चेव ने इसी वर्ग के हित साधन के लिए साम्राज्यवाद के बारे में उपरोक्त बकवास अवधारणा प्रस्तुत की।

सारांश के तौर पर हम फिर कुछ बातों को दुहरा लें :

1. अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति का यह मूल्यांकन 1963 की आम दिशा का पुनर्कथन मात्र है। यह मानकर चलता है कि पिछले 35 सालों में दुनिया में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुए हैं। बल्कि कई बार तो लगता है कि पिछले सौ सालों में (साम्राज्यवाद के उदय के बाद से) दुनिया में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसके लिए यह कोई प्रमाण नहीं देता। कोई विश्लेषण नहीं करता। वह महज वक्तव्य देता है। जब वह वास्तविक हालात का वर्णन करता है, तो अपने सूत्रीकरण से उल्टी बातें कहता है।

2. यदि पिछले 35 साल बदलाव के लिए काफी कम समय है तो यह याद रखना जरूरी है कि पश्चिमी पूंजीवाद महज 30 सालों (1870-1900) में मुक्त प्रतियोगिता वाले पूंजीवाद से एकाधिकारी पूंजीवाद –साम्राज्यवाद – में तब्दील हो गया था। यानि समय की बात बेमानी है।

3. कई बार गति को निर्धारित करने वाली प्रवृत्तियाँ सतह के नीचे होती हैं। ऐसे में उस समय विश्लेषण सही होते हुये भी भविष्य का सही आंकलन नहीं कर पाता। मार्क्स-एंगेल्स साम्राज्यवाद की उत्पत्ति को चिन्हित नहीं कर पाये, हालांकि 1890 के दशक में एंगेल्स ने इसके कुछ लक्षणों को देखना शुरू कर दिया था। इसी तरह 1963 की आम दिशा में विश्व परिस्थितियों का मूल्यांकन उस समय सही होते हुये भी वह आज के विश्व का सटीक मूल्यांकन पेश नहीं कर सकती। यहां याद रखने की जरूरत है कि हमेशा ही विचार, जिन्दगी के पीछे चलते हैं और अभिव्यक्ति, विचार के पीछे।

4. नव उपनिवेशवाद की यहां प्रस्तुत थीसिस कुछ इस प्रकार है, मानों साम्राज्यवाद ने खुद नया रूप अख्तियार कर लिया हो। इसी से बाकी चीजें निकलती हैं। लेकिन यह बात गलत है। साम्राज्यवाद खुद पीछे नहीं हटा। उसे हटाया गया है और तब से उसे लगातार पीछे हटने को मजबूर होना पड़ा है (80 के दशक के पहले तक)।

5. नव-उपनिवेशवाद के यहां प्रस्तुत वर्णन से हमेशा यह बात उभरने लगती है कि उसके लिए पूंजी का मेकेनिज्म प्रधान है। लेकिन इसे तार्किक परिणति तक नहीं पहुंचाया जाता। यदि इसके शोषण का मेकेनिज्म पूंजी है तो जहां भी यह पूंजी ऑपरेट करेगी वहां भी पूंजी का मेकेनिज्म होना आवश्यक है। यानि नव-उपनिवेशों में भी मूलत: पूंजी का राज होगा। अत: साफ है कि इन देशों में भी पूंजी का राज है। ''नव-उपनिवेशवाद'' भी इसी पूंजी का टिका हुआ है। उसका आधार सामंत नहीं, पूंजीपति हैं। ऐसे में साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष देशी पूंजी के खिलाफ संघर्ष होगा। यानि यहां राष्ट्रीय मुक्ति, समाजवादी क्रांति से जुड़ जायेगी, जनवादी क्रांति से नहीं। यहां हम यह साफ कर दें कि हम खुद नव-उपनिवेशवाद को नहीं आर्थिक नव-उपनिवेशवाद को मानते हैं और आज के विश्व के ठीक उन्हीं लक्षणों के कारण, जिनका ऊपर वर्णन किया गया है।

6. इस मूंल्याकन से यह उभरता है कि इसमें क्रांति के दोनों कार्यभारों को आपस में गड्डम-गड्ड कर दिया गया है और एक से दूसरा निष्कर्ष निकलता है। इसमें साम्राज्यवाद के प्रभाव को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जा जाता है और फिर इसके खिलाफ राष्ट्रीय क्रांति होने के कारण क्रांति के दूसरे कार्यभार को जबर्दस्ती जनवादी क्रांति घोषित कर दिया जाता है। चूंकि राष्ट्रीय क्रान्ति होनी है अत: दूसरा कार्यभार जनवादी क्रांति का ही होगा, समाजवादी क्रांति का नहीं, भले ही निशाना देशी पूंजीपति वर्ग भी हों। जबकि वास्तव में जो होगी, वह समाजवादी क्रांति होगी और वह साथ ही राष्ट्रीय मुक्ति के बचे हुए कार्यभार को भी पूरा करेगी।

7. यह थीसिस कि सोवियत संघ में संशोधनवाद इस कारण पैदा हुआ कि नव-उपनिवेशी साम्राज्यवाद का सही मूल्यांकन नहीं हुआ, गलत है। यह परिणाम को कारण की जगह रखने की गलती है। यह थीसिस इस समझ से पैदा होती है कि दूसरे इंटरनेशन के पतन के पीछे साम्राज्यवाद की समझदारी का अभाव था। यह बात भी गलत है। दूसरे इंटरनेशनल के अवसरवाद के पीछे, साम्राज्यवाद की समझदारी का अभाव नहीं, बल्कि खुद साम्राज्यवाद था। उसने अतिलाभ से अपने यहां के मजदूरों के एक हिस्से को घूस देकर उन्हें अभिजात बना दिया। यही उन देशों मजदूर आंदोलन के अवसरवाद के मूल में था। साम्राज्यवाद की समझदारी का अभाव वहीं से पैदा हुआ। अवसरवाद की जमीन, यह अति मुनाफा था, साम्राज्यवाद की समझदारी का अभाव नहीं। इसी तरह, सोवियत संघ में समाजवादी समाज में जारी वर्ग-संघर्ष में अतंत: पूंजीपति वर्ग विजयी हो गया। यह संशोधनवादियों के रूप में पार्टी व सत्ता पर काबिज हो गया। सत्ता में आने के बाद इसने ''तीन शांति सिद्धान्त'' व साम्राज्यवाद के नये सिद्धान्त प्रचारित करने शुरू किये। इस तरह साम्राज्यवाद के नये बकवास सिद्धान्त, संशोधनवाद की अभिव्यक्तियाँ व परिणाम थे, कारण नहीं। इन्हें संशोधनवाद का कारण बताना, सांस्कृतिक क्रांति की अवधारणा का निषेध तथा भाववाद की ओर ढुलकना होगा।

(ख) राष्ट्रीय परिस्थिति का मूल्यांकन - कार्यक्रम

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति की तरह राष्ट्रीय परिस्थिति के मूल्यांकन में भी उसी जड़सूत्रवाद का परिचय दिया गया है। रेड फ्लैग द्वारा जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है, वह मूलतः 1963 की आम दिशा तथा 1970 के भाकपा (माले) के कार्यक्रम के फ्रेमवर्क में नये तथ्यों को ठूंसने की कोशिश है। इसकी झलक तो स्वतंत्रता आंदोलन के वर्णन से ही मिलने लगती है:

''इस सदी के मोड़ से ही भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व भी मुख्यतः बुर्जुआ-सामंती वर्ग के हाथ में था। इन लोगों ने हमेशा ही उपनिवेशवाद के स्वार्थो के साथ समझौता किया तथा मजदूर वर्ग, किसानों एवं जनता के व्यापक समूहों की आकांक्षाओं के साथ कदम मिलाकर चलने से इंकार कर दिया।'' (भाकपा (माले) रेड फ्लैग का कार्यक्रम, चतुर्थ अखिल भारतीय सम्मेलन द्वारा अप्रैल, 1997 में पारित, पृष्ठ-5, जोर हमारा)

यानि ''बुर्जआ-सामंत'' स्वतंन्त्रता के लिए लड़ रहा था, भले ही वह समझौता परस्त क्यों न हो। यहां कोई इनसे पूछ सकता है कि साम्राज्यवाद का दलाल – बुर्जुआ, और साम्राज्यवाद का सामाजिक आधार – सामंत, भला क्यों साम्राज्यवाद से आजादी के लिए लड़ने लगे ? लेकिन रेड फ्लैग से किसी प्रकार के जवाब की उम्मीद नहीं की जा सकती। वह तो आगे बढ़कर यह कहता है कि स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करने वाले आजादी पाते ही कुछ और करने लगते हैं:

''इन दलाल शासक वर्गों के नेतृत्व में भारतीय राज्यसत्ता ने जहां पुराने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण को बरकरार रखा, वहीं अमेरिकी साम्राज्यवाद की अगुवाई वाली विश्व पूंजी को भी बढ़ते पैमाने पर यहां बुला लिया।''

(वही, पृष्ठ - 7)

बहुत खूब! तो उन्होंने आजादी की लड़ाई का नेतृत्व ही क्यों किया था ? क्या अंग्रेजों के साथ-साथ अमरीकियों को भी अपने यहां शोषण करने के लिए बुलाने के वास्ते ? कितना मूर्ख है भारतीय शासक वर्ग, रेड फ्लैग की नजर में ? इन सबका रेड फ्लैग के अनुसार परिणाम क्या हुआ ?

''भारत जैसे देश अमेरिकी अगुवाई में जो खेमा है, उसके पूर्ण प्रभुत्व के अधीन आ गये है।''

(वही, पृष्ठ-8)

यह वही नव-उपनिवेशवाद की थीसिस है, जिसका हाल हम पहले ही देख चुके हैं। यह बड़ी अजीब सी बात है कि रेड फ्लैग की नजर में भारतीय बुर्जुआ एक ऐसी कठपुतली है जो लगातार अपना मालिक बदलती रहती है। 1947 से पहले भारतीय बुर्जुआ अंग्रेजों का दलाल है इसके बाद यह ''दलाल'' अपना मालिक बदलकर अमरीकी साम्राज्यवाद का दलाल बन जाता है और 1970 के दशक में यह पुनः अपना मालिक बदलकर सोवियत सामाजिक साम्राज्यवाद का दलाल बन जाता है। और साम्राज्यवाद इतना नपुंसक है कि यह अपने दलाल द्वारा मालिक बदलने को चुपचाप देखता रहता है। धन्य है ''दलाल'' की यह थीसिस!

अब, आइये, 1991 के बाद के ''नयी आर्थिक नीति'' के जमाने पर। रेड फ्लैग कहता है :

''आई. एम. एफ., विश्व बैंक, बहुराष्ट्रीय निगमों एवं नवगठित विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से एक ऐसी परिस्थिति निर्मित की गई है जिसमें साम्राज्यवादी शक्तियां इन देशों को सार्वजनिक तौर पर आदेश दे रही हैं।''

''विश्व स्तर की इन घटनाओं के हिस्से के रूप में निजीकरण, उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के जरिए भारतीय अर्थ-व्यवस्था को क्रमशः ज्यादा से ज्यादा मात्रा में साम्राज्यवादी एजेन्सियों के द्वारा निर्देशित ढांचागत समायोजन कार्यक्रम (एस.ए.पी.) के मातहत लाया गया है।''

''नयी आर्थिक नीतियों के तहत विदेशी कर्ज आकाश छू रहा है जिसके फलस्वरूप देश ऋण-जाल में कसता जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में अ-निवेशीकरण के माध्यम से निजीकरण की गति तेज कर दी गई है। ऐसे क्षेत्र में भी, जहां अभी तक देशी बुर्जुआ का वर्चस्व था, बहुराष्ट्रीय निगमें नियंत्रणकारी स्थिति में पहुंच

गई हैं। बैंक, बीमा आदि जैसे सभी लाभप्रद क्षेत्रों को भी निजीकृत किया जा रहा है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और सट्टेबाज पूंजी की घुसपैठ क्रमशः बढ़ती जा रही है।'' *(वही, पृष्ठ 8-9, जोर हमारा)*

उपरोक्त सारा कुछ रेड फ्लैग की लाइन के अंतर्विरोध को उजागर करता है। एक ओर तो देश पहले से ही नव-उपनिवेश की स्थिति में है, दूसरी ओर 1991 के बाद देश में ऐसा कुछ हुआ है जो पहले नहीं था। यह क्या हुआ है और क्यों हुआ है, रेड फ्लैग इस सवाल को नहीं उठाता क्योंकि यह सवाल उठाते ही उसकी आजादी के बाद से आज तक नव-उपनिवेश की थीसिस भहरा कर गिर पड़ेगी।

क्या रेड फ्लैग स्वयं से कभी यह सवाल करेगा कि कुछ ऐसे क्षेत्र भारत में कैसे पैदा हो गये जिसमें ''अभी तक देशी बुर्जुआ का वर्चस्व'' था? क्या साम्राज्यवाद के पूर्णतया अधीन दलाल बुर्जुआ ऐसे क्षेत्र खड़े कर सकता था? ये जो सार्वजनिक क्षेत्र थे, वे साम्राज्यवाद से स्वतंत्र कैसे खड़े हो गये, जिनका अब निजीकरण किया जा रहा है और जो साम्राज्यवादी पूंजी के कब्जे में आ रहे हैं? आखिर 1991 से पहले और बाद के फर्क की सारवस्तु क्या है ?

भारत में उत्पादन पद्धति (mode of production) क्या है, इस बारे में कार्यक्रम साफ-साफ कुछ नहीं कहता है। यह जरूर स्वीकार किया गया है कि ''कृषि व्यवसाय के लए कृषि क्षेत्र को अंतराष्ट्रीय बाजार के साथ जोड़ने के लिए नयी आर्थिक नीतियों तहत भूमि संचय को बढ़ावा दिया गया है।'' यह प्रकारांतर से कृषि क्षेत्र में पूंजीवाद की स्वीकृति है। इनकी पत्रिका रेड स्टार के लेखों में पूंजीवाद के विकास को स्वीकार तो किया जाता है लेकिन उसे प्रधान उत्पादन पद्धति नहीं माना जाता। इसमें हाल में छपे एक लेख में यह बकवास प्रस्थापना प्रस्तुत की गई थी कि जो लोग भारत में अर्द्ध-सामंती व्यवस्था मानते है वे भी गलत हैं और जो प्रधानतः पूंजीवादी व्यवस्था मानते हैं वे भी। उसमें यह नहीं बताया गया कि तब वास्तव में है क्या। इसके बदले साम्राज्यवाद का सवाल उठा दिया गया कि आज साम्राज्यवाद कृषि में भी पूंजी निवेश कर रहा है। और फिर यह घोषित कर दिया गया कि इसके खिलाफ नयी जनवादी क्रांति होगी।

पूंजीवाद की उपस्थिति को प्रकारान्तर से स्वीकार करने के बावजूद रेड फ्लैग भारत में अर्द्ध सामंती, पूर्व-पूंजीवादी उत्पादन संबंध मानती है और घोषित करती है कि क्रांति का वर्तमान चरण ''साम्राज्यवाद-विरोधी सामंतवाद-विरोधी जनवादी क्रांति'' का चरण है।

जब जनवादी क्रांति का चरण है तो धनी किसानों के साथ छोटे और मध्यम बुर्जआ भी क्रांति में साथ आयेंगे ही। यही नहीं, वे मजदूरों किसानों के साथ ''जनता के अधिनायकतत्व'' में भी शामिल होंगे। और यह तब जब, रेड फ्लैग के ही अनुसार

''क्रांति पूर्व रूस या चीन की अपेक्षा मजदूर वर्ग ज्यादा मजबूत है। केन्द्र व राज्य सरकारों के मातहत रेलवे, बैंक, बीमा, दूरसंचार आदि से सेवा क्षेत्रों में तथा कई सरकारी संस्थाओं में मिनिस्टीरियल कर्मचारी के रूप में काम कर रहे कुलीन (ह्वाइट कॉलर) कर्मचारियों का एक बड़ा हिस्सा ज्यादा संगठित और राजनीतिक रूप से सक्रिय होता जा रहा है।.... खेतिहर मजदूर, जिनकी संख्या बारह करोड़ से ज्यादा है, किसानों के बीच सबसे संगठित, गतिशील और संख्यात्मक रूप से ताकतवर हिस्से के रूप में उभर कर सामने आये हैं।''

(वही, पृष्ठ-10)

लेकिन मजदूरों की इस ताकत के बावजूद ''किसान नव जनवादी क्रान्ति की मुख्य ताकत हैं।'' इसके जरा देर बाद हम पढ़ते हैं कि ''गरीब व भूमिहीन किसानों, मध्यम किसानों और यहां तक कि धनी किसानों के एक हिस्से के साथ-साथ ये खेतिहर मजदूर साम्राज्यवाद विरोधी, सामंतवाद विरोधी संघर्ष में मजदूर वर्ग के मुख्य मित्र है।''

पहले मजदूर वर्ग की ताकत बताई जाती है, फिर बताया जाता है कि नव जनवादी क्रांति की मुख्य ताकत किसान हैं और फिर अंत में गरीब किसानों को धनी किसानों के साथ मजदूर वर्ग का मित्र बता दिया जाता है। यह खूब हौच-पौच है। और इसक कारण नयी स्थितियों को पुराने फ्रेम में फिट करना है। चीनी क्रान्ति

के समय वहां औद्योगिक सर्वहारा की संख्या बहुत कम थी। इसलिए वहां यह बात कही गयी थी कि चीनी क्रांति में मजदूर वर्ग नेतृत्वकारी शक्ति है तथा किसान मुख्य लड़ाकू शक्ति (Working class is the leading force and peasantry is main fighting force.)। लेकिन भारत की बदली हुई परिस्थितियों को इसी सूत्र में फिट करने का प्रयास किया जाता है और नतीजा सिवाय गड़बड़झाले के कुछ और नहीं निकलता।

रेड फ्लैग सीधे-सीधे अपने कार्यक्रम में देश में पूंजीवाद के विकास को स्वीकार नहीं करती लेकिन अपने प्रमुख कार्यभारों में उन चीजों को गिनाता है जो समाजवादी कार्यभार के अलावा कुछ नहीं है। जरा देखये:

''कई सारे इलाकों में कृषि क्षेत्र की ठोस परिस्थितियों में आये बदलावों को प्रतिफलित करते हुए सहकारीकरण और सामुहिकीकरण की ओर कदम बढ़ाना''। *(वही, पृष्ठ-13)*

यह समाजवादी कार्यभार नहीं तो और क्या है? और इसके लिए क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है कि इन क्षेत्रों में पूंजीवाद का विकास हुआ है? लेकिन ऐसा करते ही उस पूंजीवादी विकास को चिन्हित करने की बात उठ खड़ी होगी और फिर अर्द्ध-सामंती थीसिस की समूची बुनियाद खिसक जायेगी।

यहां एक मजेदार बात का उल्लेख कर दें। रेड स्टार के संपादक एम.एम. सोमसेखरन ने इसके फरवरी '97 के अंक में निम्नलिखित बात कही है-

''बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और एग्रीबिजनेस के इस दौर में, जब कानूनी तौर पर 15 या 50 एकड़ से ज्यादा जमीन अपने हाथ में संकेन्द्रित करना संभव नहीं है, जैसा कि भूमि हदबंदी कानूनों में निर्धारित किया गया है, कृषि क्षेत्र में ''पूंजीवादी विकास'' की बात करना वास्तव में अविश्वसनीय है।''

(Proletarian Path, अगस्त '97 में उद्धृत, अनुवाद हमारा)

रेड फ्लैग की यह लाइन ही वास्तव में अविश्सवनीय है। भारत में बुर्जुआ कानूनों की यह पूजा तो खुद भारतीय बुर्जुआ भी नहीं करता। बल्कि क्रांतिकारी हमेशा आरोप ही यह लगाते रहे हैं कि ये कानून इतने लचर हैं कि चाहे कोई कितनी ही जमीन रख ले, उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता। लेकिन रेड फ्लैग के हमारे महान क्रान्तिकारी इस बुर्जुआ कानून के सामने इतना नतमस्तक हैं कि उसे भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास की राह में मुख्य बाधा के तौर पर पेश कर देते हैं। कानूनवाद के ये पुजारी ऐसा करते हुए यह भूल जाते हैं कि मार्क्स-लेनिन ने कई बार यह कहा था कि पूंजी सम्पत्ति के वैधानिक रूपों का कतई सम्मान नहीं करती और वह किस्म-किस्म के वैधानिक रूपों को अपने अधीन कर लेती है। भारत में भी पिछले पचास सालों में यही हुआ है और पूंजी ने कृषि क्षेत्र को मूलत: अपने नियंत्रण में ले लिया है। वैसे यह कहना बड़ी अजीब सी बात है कि 15-50 एकड़ की खेती में पूंजीवाद का विकास नहीं हो सकता, कि पूंजीवाद के विकास के लिए इससे ज्यादा बड़ी जोतें अनिवार्य हैं। तथ्य यह है कि आज बहुत छोटी-छोटी जोतें भी पूर्णतया पूंजी के प्रभाव में हैं तथा उपरोक्त क्षेत्रफल की जोतों में तो पूंजीवादी खेती हो ही रही है।

पुराने सूत्रों में नयी बातों को ठूंसने का एक और उदाहरण है – आधार क्षेत्र और दीर्घकालीन जनयुद्ध। एक ओर तो यह कहा गया है कि

''ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने.... भारत की जनता के उपर एक केन्द्रीकृत व एकीकृत भारतीय राज्यसत्ता को थोप दिया।''। *(वही, पृष्ठ-5)*

दूसरी ओर हम यह पढ़ते हैं-

''इन कार्यभारों को दीर्घ कालीन जन युद्ध के रास्ते से पूरा किया जा सकता है जो कि भारत की मुक्ति का रास्ता है।..... ठोस परिस्थितियों के अनुसार छापामार इलाकों और आधार इलाकों को विकसित करने के दीर्घकालिक लक्ष्य के साथ ....।'' *(वही, पृष्ठ-11, जोर हमारा)*

अब यदि भारत में अंग्रेजों ने ही एक केन्द्रीकृत और एकीकृत राज्यसत्ता कायम कर दी थी तो आज आजादी के पचास साल बाद वह कई गुना ज्यादा ''केन्द्रीकृत और एकीकृत'' हो गई होगी। और यही सच है।

रेल, सड़क, हवाई जहाज, टेलीफोन के साथ भारतीय राज्य सत्ता भारत के गांव-गांव तक पहुंच चुकी है। वह कहीं भी अल्प सूचना पर ही अपनी सेना पहुंचा सकती है।

इतनी ''केन्द्रीकृत और एकीकृत'' राज्यसत्ता के होते हुए आधार इलाके और दीर्घकालीन जन युद्ध की बात करना क्या वही पुराने रटे-रटाये सूत्र दुहराना नहीं है।

और अब अंत में एक और बात। यह बात रणकौशल से सबंधित है। कार्यक्रम कहता है-

''जब तक सभी सामाजिक असमानताएँ खत्म नहीं हो जाती हैं तब तक जनवादी अधिकार के रूप में जाति पर आधारित आरक्षण सुनिश्चित करना।'' *(वही, पृष्ठ-14)*

आखिर रेड फ्लैग बुर्जुआ कानूनवाद में कितना नीचे घंसेगा। यह उस पर इतना हावी है कि उसे क्रान्ति की बात करते हुए भी सुधारवादी बातें कहने को मजबूर कर देता है। अभी तक हम सभी लोग यही मानते रहे हैं, हमारी क्रांति दलितों-वंचितों को क्रांति होगी (वर्गीय आधार पर सबसे दलित-वंचित वर्ग है - मजदूर वर्ग, और वही क्रांति का वाहक भी है)। और क्रांति के बाद समाज और सत्ता में यही वंचित-दलित हावी होंगे। उन्हीं का अधिनायकत्व होगा। सब कुछ का प्रस्थान बिन्दु वे ही होंगे। यदि जाति कहीं से भी वंचना-दलन का कारण बनती है तो उस पर भी यही बात लागू होगी। यानि जो लोग आज जातिगत आधार पर प्रताड़ित किये जा रहे हैं, वे क्रांति के बाद समाज में हावी होंगे। ऐसे में उनके लिए आरक्षण की बात करना हास्यास्पद है। क्रांति के बाद दलित-वंचित जाति से आना उसी तरह गर्व की बात हो जायेगी, जिस तरह क्रांति के बाद रूस-चीन में मजदूर वर्ग से या गरीब किसान से आना गर्व की बात थी। निश्चय ही यह उसी हद तक होगा, जिस हद तक जातिगत विभाजन और जातिगत चेतना रहेगी। समय के साथ यह विभाजन और चेतना दोनों ही खत्म हो जायेंगे और वंचित-दलित जाति के लोग अपने को केवल मजदूर वर्ग या मेहनतकश तबके के रूप में पहचानने लगेंगे। ऐसे में दलित-वंचित जाति के लोगों को क्रांति के बाद आरक्षण का क्या सवाल उठता है? उनका हित प्राथमिकता में होगा। इसके सामने आरक्षण आप्रासंगिक हो जाएगा।

अंत में इस मामले के सारांक्ष को हम फिर यहां दुहरा लें :

(1) यह पूरा कार्यक्रम 1970 के भाकपा (माले) के कार्यक्रम में बाद के बदलावों को ठूंसने का प्रयास या कसरत है। 1970 का कार्यक्रम भी अपनी मूल आत्मा में 1951 में भाकपा द्वारा स्वीकृत पार्टी कार्यक्रम की अनुकृति था। इस तरह यह कार्यक्रम मूलतः 1951 के पार्टी कार्यक्रम का नवीन संस्करण है। और यही इसकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

(2) चूंकि इन पचास सालों में देश-दुनिया में बहुत सारे परिवर्तन हो चुके हैं, अतः इन सारे परिवर्तनों को 1951 के फेमवर्क में (या 1970 के फ्रेमवर्क में) ठूंसने का कोई भी प्रयास केवल अंतर्विरोधों को ही जन्म देगा। केवल दो बिन्दुओं को लें-

(क) यदि राजसत्ता का चरित्र केन्द्रीकृत व एकीकृत है (और यह सच्चाई है) तो इसके खिलाफ आधार क्षेत्र का निर्माण कैसे संभव है? वह तो विकेन्द्रित व विखंडित राज्यों मे (जैसे क्रांति पूर्व चीन में) ही संभव है। आज किसी भी स्थानीय विद्रोह से निपटने के लिए राज्य को 24 घंटे पर्याप्त हैं। ऐसे में आधार क्षेत्र का क्या मतलब रह जाता है? अब केवल राष्ट्रव्यापी विद्रोह ही संभव है।

(ख) कृषि क्षेत्र में पूंजीवाद के प्रवेश के पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं। सबसे बड़ा प्रमाण तो खुद रेड फ्लैग के कार्यक्रम में सहकारीकरण और सामूहिकीकरण का जिक्र है। ऐसे में हठपूर्वक नयी जनवादी क्रांति से क्यों चिपके रहा जाय? जिन सामंती जमींदारों का जिक्र कार्यक्रम में है, वे देश में कहा है ? सामंतवाद कोई निश्चित आर्थिक संबंध है या मानसिकता और प्रवृति मात्र! इस सामंतवाद से नव उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद का क्या आर्थिक संबंध है ? साम्राज्यवाद का क्या हित है, उसे बनाये रखने में? उस साम्राज्यवाद को, जो आज IMF, WB, WTO इत्यादि के माध्यम से मात्र पूंजी के मेकेनिज्म से काम कर रहा है? निजीकरण इत्यादि के जरिये पूंजी के निर्बाध विचरण की मांग करने वाले साम्राज्यवाद के लिए इस सामंतवाद की क्या उपयोगिता है? यदि

आज साम्राज्यवाद का आधार सामंतवाद नहीं है तो फिर इस सामंतवाद के खिलाफ लड़ने वाले किसान क्यों स्वत: ही साम्राज्यवाद के खिलाफ भी लड़ने को तैयार हो जायेंगे? जनवादी क्रांति (कृषि क्रांति) क्यों साथ ही राष्ट्रीय मुक्ति की क्रांति भी हो जायेगी?

(3) वर्गो के संश्रय वाला पैराग्राफ (पैरा 20) तो अजीबोगरीब अंतर्विरोधों का शिकार है। यह ठीक भी है क्योंकि पूरे कार्यक्रम की सारवस्तु वर्गों के संश्रय में अभिव्यक्त होती है। अत: कार्यक्रम के पूरे हौच-पौच को सबसे तीखे ढंग से यहीं अभिव्यक्त होना है। ''भारत का मजदूर वर्ग रूसी मजदूर से भी ज्यादा बड़ा और मजबूत है'', ''खेतिहर मजदूर भी (12 करोड़ से ज्यादा) गांवों में सबसे संगठित व गतिशील हैं।'' लेकिन फिर भी ''क्रांति की मुख्य ताकत किसान होंगे।'' यह आज की सही वस्तुनिष्ठ स्थिति को पुराने फ्रेमवर्क में ठूंसने का सबसे अच्छा उदाहरण है। शहरी व देहाती, दोनों मजदूरों द्वारा क्रांति का नेतृत्व व लड़ाकू शक्ति होने के बदले, गांव का सर्वहारा क्रांति का मित्र भर रह जाता है - धनी किसानों के समांतर ! क्रांति में अपनी भूमिका में धनी किसान, मध्यम किसान, गरीब किसान व खेतिहर मजदूर एक जमीन पर जा खड़े होते हैं।

(4) माओ की नयी जनवादी क्रांति की थीसिस के अध्ययन से यह बात साफ उभरती है कि उनकी नयी जनवादी क्रांति की अवधारणा एक विकसित होती हुई (evolving) अवधारणा है – ठोस परिस्थितियों में क्रांति करने के प्रयास से पैदा होती हुई। वह बना-बनाया सूत्र या चौखटा नहीं है। माओ कहीं पर भी हर जगह लागू होने वाला फार्मूला ईजाद करने का कोई संकेत नहीं देते। वे तो चीन में समाजवादी क्रांति कैसे हो, इसका रास्ता ढूंढ़ रहे होते हैं। और इस प्रयास में ''नया जनवाद'' की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। इसका लक्ष्य है चीन में राष्ट्रीय मुक्ति और जनवाद के कार्यभारों का पूरा करते हुए समाजवाद की ओर प्रस्थान करना। इस तरह यह लेनिन की ''दो कार्यनीतियों'' या मार्क्स की ''जर्मनी में क्रांति.....'' का विस्तार है। लेकिन हमारे देश के क्रांतिकारियों ने इसे फार्मूला बना दिया। और फिर इस फार्मूले में जिन्दगी को ठूंसने लगे। रेड फ्लैग भी इसी का शिकार है।

(5) हमारे देश के क्रांतिकारियों की निगाह में नयी जनवादी क्रांति, बुर्जुआ जनवादी क्रांति का स्थानापन्न (subsitute) है। हर देश को या तो बुर्जुआ जनवादी क्रांति से, नहीं तो नयी जनवादी क्रांति की मंजिल से गुजरना है। इसके बिना कोई भी देश समाजवादी क्रांति की मंजिल तक नहीं पहुंच सकता। यदि किसी देश में बुर्जुआ जनवादी क्रांति या नव जनवादी क्रांति नहीं हुई तो वह नव-जनवादी क्रांति की मंजिल में ही पड़ा रहेगा, भले ही सदियों पर सदियां बीत जायें। धन्य है, मन्जिलों वाला सिद्धान्त! इतिहास यदि इनके बनाये चौखटे से नहीं गुजरता तो वे इतिहास की गति को देखने से इंकार कर देंगे। वे यह देखने से इंकार कर देंगे कि कोई देश बिना क्रांति किये भी धीरे-धीरे सामंती से पूंजीवादी देश में बदल सकता है और इस तरह समाजवादी क्रांति एजेन्डे पर आ सकती है। वे इतिहास के इस तथ्य से आंखें चुरा लेंगे कि यूरोप के अधिकांश देशों में यही हुआ। वे भारत जैसे देशों के विकास को देखने से भी इंकार कर देंगे। 'मूदहूं आंख, कतहुं कछु नाहीं'।

निष्कर्ष

इस वर्णन से निष्कर्ष यह निकलता है कि भाकपा (माले) रेड फ्लैग अपनी विचारधारा और सांगठनिक लाइन में अधिकाधिक अवसरवाद को प्रश्रय दे रहा है। कई जगह तो उसमें और संशोधनवादियों में विभाजन रेखा बहुत धुंधली होने लगती है। यदि उसने अपने कदम पीछे नहीं खींचे तो वह संशोधनवाद के दलदल में उतर सकता है। यह पूरे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी खेमे के लिए गंभीर चिन्ता का विषय है। जहां तक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों के मूल्यांकन और रणकौशलात्मक लाइन का सवाल है, यह नये तथ्यों को या तो देखने से इंकार कर देता है या फिर उन्हें पुराने चौखटे में ठूंसने का प्रयास करता है। ऐसा करते हुए यह ढेर सारे अंतर्विरोधों का शिकार हो जाता है। यह जड़सूत्रों को लकीर के फकीर की तरह दुहराता रहता है तथा जिन्दगी इसकी पकड़ से फिसलती रहती है।

■ ■ ■